

**Premchand**  
**Gulli Danda**  
**Chapter 1**  
**DV**

हमारे अंगरेजीदाँ दोस्त मानें, या न मानें, मैं तो कहूँगा की गुल्ली-डंडा सब खेलों का राजा है। अब भी लड़कों गुल्ली डंडा खेलते देखता हूँ तो जी लोट-पोट हो जाता है कि इनके साथ जाकर खेलने लगूँ। न लॉन की जरूरत न, न कोर्ट की, न नेट की, न थापी की। मजे से किसी पेड़ से क टहनी काट ली, गुल्ली बना ली और दो आदमी आ गये तो खेल शुरू हो गया। विलायती खेलों में सबसे बड़ा ब यह है कि उनके सामान महँगे होते हैं। जब तक कम से कम क सैकड़ा न खर्च कीजि, खिलाड़ियों में शुमार ही नहीं हो सकता। यहाँ गुल्ली-डंडा है कि बिना हर्रे-फिटकरी के चोखा रंग देता है। पर हम अँगरेजी चीजों के पीछे से दीवाने हो रहे हैं कि अपनी सभी चीजों से अरुचि हो गयी है। हमारे स्कूल में हर क लड़के से तीन-चार रुपये सालाना केवल खेलने की फीस ली जाती है। किसी को यह नहीं

सूझती कि भारतीय खेल खिलाये जो बिना दाम-कौड़ी खेले जाते हैं। अँगरेजी खेल उसी के लि है जिसके पास धन है। गरीब लड़कों के सिर क्यों यह व्यसन मढ़ते हैं। ठीक है गुल्ली से आँख फूट जाने का भय रहता है, तो क्या क्रिकेट से सिर फूट जाने, तिल्ली फट जाने का, टाँग टूट जाने का भय नहीं रहता ? अगर हमारे माथे में गुल्ली का दाग आज तक बना हुआ है तो हमारे कई दोस्त से भी हैं, जो थापी को बैसाखी से बदल बैठे। खैर, यह अपनी-अपनी रुचि है। मुझे गुल्ली ही सब खेलों

से अच्छी लगती है और बचपन की मीठी स्मृतियों में गुल्ली ही सबसे मीठी है। वह प्रातःकाल घर से निकल जाना, वह पेड़ पर चढ़ कर टहनियाँ काटना और गुल्ली-डंडे बनाना, वह उत्साह, वह लगन, वह खिलाड़ियों के जमघट, वह पदना और पदाना, वह लड़ाई-झगड़े, जिसमें छूत-अछूत, अमीर-गरीब का बिलकुल भेद न रहता था, जिसमें अमीराना चोचलों की, प्रदर्शन की अभिलाषा की गुंजाइश ही न थी, उस वक्त भूलेगा जब.....

घर वाले बिगड़ रहे हैं, पिता जी चौके पर बैठे वेग से रोटियों पर अपना क्रोध उतार रहे हैं,

अम्माँ की दौड़ केवल द्वार तक है, लेकिन उनकी विचारधारा में मेरा अंधकारमय भविष्य टूटी हुई नौका की तरह डगमगा रहा है ; और मैं हूँ कि पदाने में मस्त हूँ । न नहाने की सुध है, न खाने की। गुल्ली है तो जरा-सी, पर उनमें दुनिया भर की मिठाईयों की मिटास और तमाशों का आनन्द भरा हुआ है।

मेरे हमजोलियों में क लड़का गया नाम का था। मुझसे दो तीन साल बड़ा होगा। दुबला,

लम्बा बन्दरों की-सी लम्बी-लम्बी, पतली-पतली उँगलियाँ, बंदरों ही की-सी चपलता, झल्लाहट। गुल्ली कैसी ही हो, उस पर इस तरह लपकता था, जैसे छिपकली कीड़ों पर लपकती है। मालुम नहीं उसके

माँ-बाप थे या नहीं, कहाँ रहता था, क्या खाता था, पर था हमारे गुल्ली क्लब का चैम्पियन। जिसकी तरफ वह आ जाय उसकी जीत निश्चित ही थी। हम सब उसे दूर से आते देख उसका दौड़कर स्वागत करते थे। और उसे अपना गोइयाँ बना लेते थे।

क दिन हम और गया दोनों ही खेल रहे थे। वह पदा रहा था, मैं पद रहा था, मगर कुछ

विचित्र बात है कि पदाने में हम दिन भर मस्त रह सकते हैं, पदना क मिनट का अखरता है। मैंने

गला छुड़ाने के लि सब चालें चलीं, जो`से अवसर पर शास्त्र-विहित न होने पर भी क्षम्य हैं, लेकिन गया अपना दाँव लि बगैर मेरा पिंड न छोड़ता था।

मैं घर की ओर भागा। अनुनय-विनय का कोई असर न हुआ ।

गया ने मुझे दौड़कर पकड़ लिया और डंडा तान कर बोला- मेरा दाँव देकर जाओ। पदाया तो बड़े बहादुर बनके, पदने के बेर क्यों भागे जाते हो ?

‘तुम दिन भर पदाओ तो मैं दिन भर पदता रहूँ !’

‘हाँ, तुम्हें दिन भर पदना पड़ेगा !’

‘न खाने जाऊँ न पीने जाऊँ !’

‘हाँ ! मेरा दाँव दिये बिना कहीं नहीं जा सकते।’

‘मैं तुम्हारा गुलाम हूँ ?’

‘हाँ, मेरे गुलाम हो। ’

‘मैं घर जाता हूँ, देखूँ क्या कर लेते हो ?’

‘घर कैसे जाओगे, कोई दिल्लगी है। दाँव दिया है, दाँव लेंगे।’

‘अच्छा कल मैंने अमरुद खिलाया था। वह लौटा दो।’

‘वह तो पेट में चला गया।’

‘निकालों पेट से, तुमने क्यों खाया मेरा अमरुद ?’

‘अमरुद तुमने दिया , तब मैंने खाया। मैं तुमसे माँगने न गया था।’

‘जब तक मेरा अमरुद न दोगे मैं दाँव न दूँगा। ’

मैं समझता था, न्याय मेरी ओर है। आखिर मैंने किसी स्वार्थ से ही उसे अमरुद खिलाया होगा। कौन निःस्वार्थ किसी के साथ सलूक करता है। भिक्षा तक तो लोग स्वार्थ के लि देते हैं। जब गया ने अमरुद खाया तो फिर उसे मुझसे दाँव लेने का क्या अधिकार है ? रिश्वत देकर तो लोग खून पचा जाते हैं। यह मेरा अमरुद यों ही हजम कर जायेगा। अमरुद पैसे के पाँच वाले थे, गया के बाप को नसीब न होंगे। यह सरासर अन्याय था।

गया ने मुझे अपनी ओर खींचते हु कहा- मेरा दाँव देकर जाओ, अमरुद-समरुद मैं नहीं जानता।

मुझे न्याय का बल था । वह अन्याय पर टूटा हुआ था । मैं हाथ छुड़ाकर भागना चाहता था वह मुझे जाने न देता था । मैंने गाली दी, उसने कड़ी गाली दी और गाली ही नहीं, दो-

क चाँटा भी जमा दिया। मैंने उसे दाँत से काट लिया। उसने मेरी पीठ पर डंडा जमा दिया। मैं रोने लगा। गया मेरे इस शस्त्र का मुकाबला न कर सका। भागा। मैंने तुरन्त आँसू पोंछ डाले, डंडे की चोट भूल गया और हँसता हुआ घर जा पहुँचा। मैं थानेदार का लड़का, क नीच जाति के लौड़े के हाथों पिट गया ; यह मुझे उस समय भी अपमानजनक मालूम हुआ ; लेकिन घर में किसी से शिकायत न की।

उन्हीं दिनों पिता जी का तबादला वहाँ से हो गया । नयी दुनिया देखने की खुशी में सा फूला कि अपने हमजोलियों से बिछुड़ जाने का बिल्कुल दुःख न हुआ। पिता जी दुःखी थे। यह बड़ी आमदनी की जगह थी। अम्माँ जी भी दुःखी थीं, यहाँ सब चीजें सस्ती थीं और मुहल्ले की स्त्रियों से घराव सा हो गया था ; लेकिन मैं मारे खुशी के फूला न समाता था। लड़कों से जीट उड़ा रहा था कि वहाँ से घर थोड़े होते हैं ; से-से ऊँचे घर हैं कि आसमान से बात करते हैं। वहाँ के अंगरेजी स्कूल में कोई मास्टर लड़को को पीटे तो उसे जेहल हो जा। मेरे मित्रों की फैली हुई आँखें और चकित मुद्रा बतला रही थीं कि मैं उनकी निगाह में कितना ऊँचा उठ गया हूँ। बच्चों में मिथ्या को सत्य बना लेने वह की शक्ति है, जिसे हम, जो सत्य का मिथ्या बना लेते हैं, क्या समझेंगे। उन बेचारों से मुझसे कितनी स्पर्धा हो रही थी। मानों कह रहे थे-तुम भगवान हो भाई, जाओ हमें तो इसी उजड़ ग्राम में जीना भी है और मरना भी।

बीस साल गुजर गये । मैंने इन्जीनियरी पास की और उसी जिले का दौरा करता हुआ उसी

कस्बे में पहुँचा तो और डाकबंगले में ठहरा । उस स्थान को देखते ही इतनी मधुर बाल-स्मृतियाँ हृदय में जाग उठीं कि मैंने छड़ी उठायी और कस्बे की सैर करने निकला। आँखें

किसी प्यासे पथिक की भाँति बचपन के उन क्रीड़ा स्थलों को देखने के लिये व्याकुल हो रही थीं ; पर उसी परिचित के नाम के सिवा वहाँ और कुछ परिचित न था। जहाँ खंडहर था वहाँ पक्के मकान खड़े थे। जहाँ बरगद का पेड़ था वहाँ अब सुन्दर बगीचा था। स्थान का कायापलट हो गया था। अगर उसके नाम और स्थिति का ज्ञान न होता तो मैं इसे पहचान भी न सकता। बचपन की संचित और अमर स्मृतियाँ बाँहें खोले अपने उन पुराने मित्रों से गले मिलने को अधीर हो रही थीं ; मगर वह दुनिया बदल गयी। ऐसा जी होता था कि उस धरती से लिपट कर रोऊँ और कहूँ-तुम मुझे भूल गयीं ?

मैं तो अब भी तुम्हारा वही रूप देखना चाहता हूँ।

सहसा क खुली हुई जगह में मैंने दो-तीन लड़कों को गुल्ली-डंडा खेलते देखा। क क्षण के लिये मैं अपने को

बिलकुल भूल गया। भूल गया कि मैं क अफसर हूँ, साहबी ठाट में, रोब और अधिकार के आवरण में।

जाकर क लड़के से पूछा- क्यों बेटे, यहाँ कोई गया नाम का आदमी रहता है?

क लड़के ने गुल्ली-डंडा समेट कर सहमें हु स्वर में कहा--कौन गया ? गया चमार ?

मैंने यों ही कहा- हाँ-हाँ वही। गया नाम का कोई आदमी है तो ? शायद वही हो।

‘हाँ, है तो।’

‘जरा उसे बुला सकते हो ?’

लड़का दौड़ा हुआ गया और क्षण में क पाँच हाथ के काले देव को साथ लि आता दिखाई दिया । मैं दूर ही से ही पहचान गया। उसकी ओर लपकना चाहता था कि उसके गले लिपट जाऊँ पर कुछ सोच कर रह गया । बोला --कहो गया, मुझे पहचानते हो ?

गया ने झुक के सलाम किया-हाँ मालिक, भला पहचानूँगा क्यों नहीं ? आप मजे में रहे ?

‘बहुत मजे में। तुम अपनी कहो।’

‘डिप्टी साहब का साईस हूँ।’

‘मतई, मोहन, दुर्गा यह सब कहाँ हैं ? कुछ खबर है ?’

मतई तो मर गया । दुर्गा और मोहन दोनों डाकिये हो गये हैं। आप ?

‘मैं तो जिले का इंजीनियर हूँ।’

‘सरकार तो पहले ही बड़े जहीन थे।’

‘अब कभी गुल्ली-डंडा खेलते हो ?’

गया ने मेरी ओर प्रश्न की आँखों से देखा- अब गुल्ली-डंडा क्या खेलूँगा सरकार, अब तो धंधे

से छुट्टी नहीं मिलती।

आओ आज हम तुम खेलें। तुम पदाना हम पढ़ेंगे। तुम्हारा क दाँव हमारे ऊपर है वह आज ले लो।

गया बड़ी मुश्किल से राजी हुआ। वह ठहरा टके का मजदूर, मैं क बड़ा अफसर । हमारा और उसका क्या जोड़। बेचारा झेंप रहा था लेकिन मुझे कुछ झेंप न थी ; इसलि नहीं कि मैं गया के साथ खेलने जा रहा था , बल्कि इसलि कि लोग इस खेल को अजूबा समझ कर इसका तमाशा बना लेंगे और अच्छी खासी भीड़ लग जायगी। उस भीड़ में वह आनन्द कहाँ रहेगा ; पर खेले बगैर तो रहा नहीं जाता था । आखिर निश्चय हुआ कि दोनों जने बस्ती से बहुत दूर काँत में जाकर खेलें। वहाँ कौन कोई देखने वाला बैठा होगा। मजे से खेलेंगे और बचपन की उस मिठाई को खूब रस ले-लेकर खायेंगे। मैं गया को लेकर डाकबँगले आया और मोटर में बैठ कर दोनों मैदान की ओर चले। साथ में क कुल्हाड़ी ले ली। मैं गंभीर भाव धारण किये था। लेकिन गया इसे अभी तक मजाक समझ रहा था। फिर भी उसके मुख पर उत्सुकता या आनन्द का कोई चिह्न न था। शायद वह हम दोनों में जो अन्तर हो गया था वही सोचने में मग्न था।

मैंने पूछा- तुम्हें कभी हमारी याद आती थी गया ? सच कहना।

गया झेंपता हुआ बोला-मैं आपको क्या याद करता हुजूर, किस लायक हूँ।

भाग में आपके साथ कुछ दिनों तक खेलना बदा था, नहीं मेरी क्या गिनती।

मैंने कुछ उदास होकर कहा- लेकिन मुझे तो बराबर तुम्हारी याद आती थी। तुम्हारा वह डंडा, जो तुमने तान कर जमाया था, याद है न ?

गया ने पछताते हुआ कहा- वह लड़कपन था सरकार, उसकी याद न दिलाओ।

‘वाह ! वह मेरे बाल-जीवन की सबसे रसीली याद है। तुम्हारे उस डंडे में जो रस था, वह तो अब न आदर सम्मान में पाता हूँ, न धन में । कुछेसी मिठास थी उसमें कि आज तक उससे मन मीठा होता रहता है।

इतनी देर में हम बस्ती से कोई तीन चार मील निकल आये। चारों तरफ सन्नाटा है। पश्चिम की ओर कोसों तक भीमताल फैला हुआ है, जहाँ आकर हम किसी समय कमल पुष्प तोड़ ले जाते थे और उसके झुमके बना कर कानों में डाल लेते थे। जेठ की संध्या केसर में डूबी चली आ रही है। मैं लपक कर क पेड़ पर चढ़ गया और टहनी काट लाया। चटपट गुल्ली-डंडा बन गया।

खेल शुरू हो गया । मैंने गुच्ची में गुल्ली रख कर उछाली। गुल्ली गया के सामने से निकल गई। उसने हाथ लपकाया जैसे मछली पकड़ रहा हो। गुल्ली उसके पीछे जाकर गिरी। यह वही गया है जिसके हाथों में गुल्ली जैसे अपने आप ही जाकर बैठ जाती थी, वह दाहिने-बाँयें कहीं हो। गुल्ली उसके हथेलियों में ही जा पहुँचती थी, जैसे गुल्लियों पर वशीकरण डाल देता हो। नयी गुल्ली, पुरानी गुल्ली, छोटी गुल्ली, बड़ी गुल्ली, नोकदार गुल्ली, सपाट गुल्ली सभी उससे मिल जाती थीं। जैसे उसके हाथों में कोई चुम्बक हो, जो गुल्लियों को खींच लेता हो। लेकिन आज गुल्ली को उससे वह प्रेम न रहा। अभ्यास कसर बेईमानी से पूरी कर रहा था। हुच जाने पर भी डंडा खेले जाता था ।

हालाँकि शास्त्र के अनुसार गया की बारी आनी चाहि थी। गुल्ली पर ओछी चोट पड़ती और वह जरा

दूरी पर गिर पड़ती तो मैं झपट कर उठा लेता और दोबारा टाँड़ लगाता। गया के सारी बेकायदगियाँ देख रहा था पर कुछ ने बोलता था, जैसे उसे यह सब कायदे-कानून भूल गये। उसका निशाना कितना अचूक था ; गुल्ली उसके हाथ से निकल कर टन से डंडे में

जाकर लगती थी। उसके हाथ में

छूट कर उसका काम डंडे से टकरा जाना ; लेकिन आज वह गुल्ली डंडे में लगती ही नहीं। कभी दाहिने जाती है, कभी बायें, कभी आगे, कभी पीछे।

आध घंटे पदाने के बाद क बार गुल्ली-डंडे में आ लगी। मैंने धाँधली की, गुल्ली डंडे में नहीं लगी, बिल्कुल पास से गयी ; लेकिन लगी नहीं।

गया ने किसी प्रकार का असंतोष नहीं प्रकट किया।

‘न लगी होगी।’

‘डंडे में लगती तो क्या बेईमानी करता ?’

‘नहीं भैया, तुम भला बेईमानी करोगे ?’

बचपन में, मजाल था कि'सा घपला करके जीता बचता। यही गया गरदन पर चढ़ बैठता ; लेकिन आज उसे कितनी आसानी से धोखा दिये चला जाता था। गधा है ! सारी बातें भूल गया।

सहसा गुल्ली डंडे में लगी और इतने जोर से लगी जैसे बंदूक छूटी हो। इस प्रमाण के सामने अब किसी तरह की धाँधली करने का साहस मुझे इस वक्त भी न हो सका ; लेकिन क्यों न क बार सच को झूठ बताने की चेष्टा करूँ ? हरज ही क्या है मान गया तो वाह-वाह नहीं तो दो-चार हाथ पदना ही तो पड़ेगा। अँधेरे का बहाना करके जल्दी से गला छुड़ा लूँगा। फिर कौन दाँव देने आता है।

गया ने विजय के उल्लास में कहा-लग गयी, लग गयी ! टन से बोली !

मैंने अनजान बनने की चेष्टा करके कहा-तुमने लगते देखा ! मैंने तो नहीं देखा।

‘टन से बोली है सरकार !’

‘और जो किसी ईट से लग गया हो ?’



मेरे मुख से यह वाक्य उस समय कैसे निकला इसका मुझे खुद आश्चर्य है। इस सत्य को झुठलाना वैसा ही था जैसे दिन को रात बताना। हम दोनों ने गुल्ली को डंडे में जोर से लगते देखा था; लेकिन गया ने मेरा कथन स्वीकार कर लिया।

‘हाँ, किसी ईंट में लग गयी होगी। डंडे में लगती तो इतनी आवाज न आती।’

मैंने फिर पदाना शुरू कर दिया। लेकिन इतनी प्रत्यक्ष धाँधली कर लेने के बाद गया की सरलता पर मुझे दया आने लगी ; इसलि अब तीसरी बार गुल्ली डंडे में लगी, तो मैंने बड़ी उदारता से दाँव देना तय किया।

गया ने कहा - अब तो अँधेरा हो गया है भैया, कल पर रखो।

मैंने सोचा, कल बहुत सा समय होगा, यह जाने कितनी देर पदावे, इसलि इसी वक्त मुआमला साफ कर लेना अच्छा होगा।

‘नहीं, नहीं । अभी बहुत उजाला है। तुम अपना दाँव ले लो। ’

‘गुल्ली सूझेगी नहीं।’

‘कुछ परवाह नहीं !’

गया ने पदाना शुरू किया। पर उसे बिल्कुल अभ्यास न था। उसने दो बार टाँड़ लगाने का इरादा किया। पर

उसे बिल्कुल अभ्यास न था। उसने दो बार टाँड़ लगाने का इरादा किया, लेकिन दोनों ही बार हुच गया। क मिनट से कम मे वह दाँव पूरा कर चुका । बेचारा घंटा भर पदा, पर क ही मिनट में अपना दाँव खो बैठा। मैंने अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया ।

‘एक दाँव और खेल लो । तुम तो पहले ही हाथ में हुच गये।’

‘नहीं भैया, अब अँधेरा हो गया ।’

‘तुम्हारा अभ्यास छूट गया । कभी खेलते नहीं ?’

‘खेलने का समय कहाँ मिलता है भैया ?’

हम दोनों मोटर पर जा बैठे और चिराग जलते-जलते पड़ाव पर पहुँच गये।

गया चलते-चलते बोला- कल यहीं गुल्ली-डंडा होगा। सभी पुराने खिलाड़ी खेलेंगे। तुम भी आओगे ?

जब तुम्हें फुरसत हो तभी खिलाड़ियों को बुलाऊँ।

मैंने शाम का समय दिया और दूसरे दिन मैच देखने गया। कोई दस-दस आदमियों की मंडली थी। कई मेरे लड़कपन के साथी निकले। अधिकाँश युवक थे, जिन्हें मैं पहचान न सका। खेल शुरू हुआ। मैं मोटर पर बैठा-बैठा तमाशा देखने लगा। आज गया का खेल, उसका वह नैपुण्य देख कर मैं चकित रह गया। टाँड़ लगाता तो गुल्ली आसमान से बातें करती। कल की सी वह झिझक, वह

हिचकिचाहट, वह बेदिली आज न थी। लड़कपन में जो बात थी, आज उसने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली थी। कहीं कल इसने मुझे इस तरह पदाया होता, तो मैं जरूर रोने लगता। उसके डंडे की चोट खाकर गुल्ली दो सौ गज की खबर लाती थी।

पदनेवालों में क युवक ने कुछ धाँधली की। उसने अपने विचार में गुल्ली रोक ली थी। गया का कहना था-गुल्ली जमीन में लग कर उछली थी। इस पर दोनों में ताल ठोकने की नौबत आयी। युवक दब गया। गया का तमतमाया हुआ चेहरा देखकर डर गया। अगर वह दब न जाता तो जरूर मार-पीट हो जाती। मैं खेल में न था; पर दूसरों की इस खेल में मुझे वही लड़कपन का आनन्द आ रहा था, जब हम सब-कुछ भूल कर मस्त हो जाते थे। अब मुझे मालूम हुआ कि कल गया ने मेरे साथ खेला नहीं, केवल खेलने का बहाना किया। उसने मुझे दया पात्र समझा। मैंने धाँधली की, बेईमानी की, पर उसे जरा भी क्रोध न आया, इसलि कि वह खेल न रहा था, मुझे खेला रहा था, मेरा मन रख रहा था। वह मुझे पदा कर मेरा कचूमर नहीं निकालना चाहता था। मैं अब अफसर हूँ। यह अफसरी मेरे और उनके बीच में दीवार बन गयी है। अब उसका लिहाज पा सकता हूँ, अदब पा सकता हूँ, साहचर्य नहीं पा सकता। लड़कपन था, तब मैं उसका समकक्ष था। हममें कोई भेद न था। यह पद पाकर अब मैं केवल उसकी दया के योग्य हूँ। वह मुझे अपना जोड़ नहीं समझता। वह बड़ा हो गया है, मैं छोटा हो गया हूँ।

